

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 17: कलि का दमन

12 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

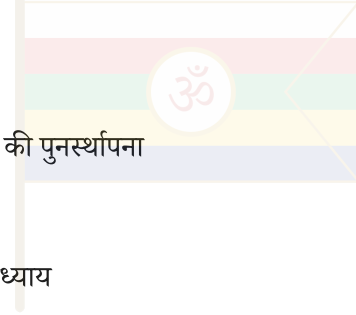
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जब कोई धर्मपरायण राजा प्रातःकाल निकलता है और असहायों की पुकार सुनता है, तब मानो समूची पृथ्वी साँस रोककर देखती है। श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के इस सत्रहवें अध्याय में सम्राट परीक्षित एक निर्मम दृश्य के सम्मुख आते हैं — और वहाँ उनका आचरण एक पूरे युग की दिशा तय कर देता है। यहाँ अधर्म के मूर्त रूप कलि का सामना होता है, उस पर न्याय होता है, और फिर असाधारण करुणा के साथ उसे प्राणदान भी मिलता है। यह अध्याय बलवान् के द्वारा निर्बल की रक्षा का, युगों के साथ धर्म के क्रमिक क्षय का, और इस सत्य का उपदेश है कि भगवान् में अनुरक्त एक ही आत्मा किस प्रकार सम्पूर्ण युग के अंधकार को रोक सकती है।

अध्याय-परिचय

- ग्रन्थ: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: प्रथम
- अध्याय: सत्रह
- अध्याय-शीर्षक: कलि का दमन और कल्याण
- मुख्य वक्ता: श्री सूत गोस्वामी (सम्राट परीक्षित के चरित्र का वर्णन करते हुए)
- मुख्य श्रोता: नैमिषारण्य में एकत्र शौनक आदि ऋषिगण
- मुख्य स्थल: सरस्वती नदी का तट, सम्राट परीक्षित का राज्य
- केन्द्रीय विषय: राजा परीक्षित का कलि से सामना — दण्ड, क्षमा और धर्म की पुनर्स्थापना
- मुख्य श्लोक-सीमा: श्रीमद्भागवतम् 1.17.1–45
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण, प्रथम स्कन्ध, सप्तदश अध्याय



तट पर एक करुण पुकार

श्री सूत गोस्वामी सम्राट परीक्षित की कथा आगे बढ़ाते हैं — वही परीक्षित, अर्जुन के पौत्र, जो अपने राज्य में विचरण कर रहे थे। सरस्वती के तट पर उन्होंने एक स्तब्ध कर देने वाला दृश्य देखा: राजवेश धारण किए हुए एक व्यक्ति, हाथ में डंडा लिए, एक बैल और एक गाय को इस प्रकार पीट रहा था मानो संसार में उनका कोई रक्षक ही न हो।

वह बैल कमलनाल के समान श्वेत था। वह भय से काँपता हुआ केवल एक पैर पर बड़ी कठिनाई से खड़ा था, और बार-बार पीटा जा रहा था। उसके पास वह गाय — जो यज्ञादि धर्मकार्यों के लिए दूध, घी आदि सामग्री देती है — लात से मारी गई थी, अपने बछड़े से बिछुड़ी हुई थी, आँखों में आँसू लिए, दुबली और भूखी।

गां च धर्मदुष्टां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् । विवत्सामश्रुवदनां क्षामां यवसमिच्छतीम् ॥

अर्थ: और उन्होंने उस गाय को देखा, जो समस्त धर्मकार्यों की सामग्री देने वाली है, पर अब दीन हो गई थी — शूद्र के पैर से आहत, बछड़े से रहित, मुख पर आँसू लिए, कृश और थोड़ी-सी घास के लिए तरसती हुई। (श्रीमद्भागवतम् 1.17.3)



वह बैल, जैसा आगे प्रकट होगा, पशु के रूप में स्वयं धर्म हैं; और वह गाय साक्षात् पृथ्वी माता हैं। जो उन्हें पीट रहा था — राजा का वस्त्र पहने पर नीच पुरुष जैसा आचरण करता हुआ — वह अधर्म का मूर्त रूप कलि था।

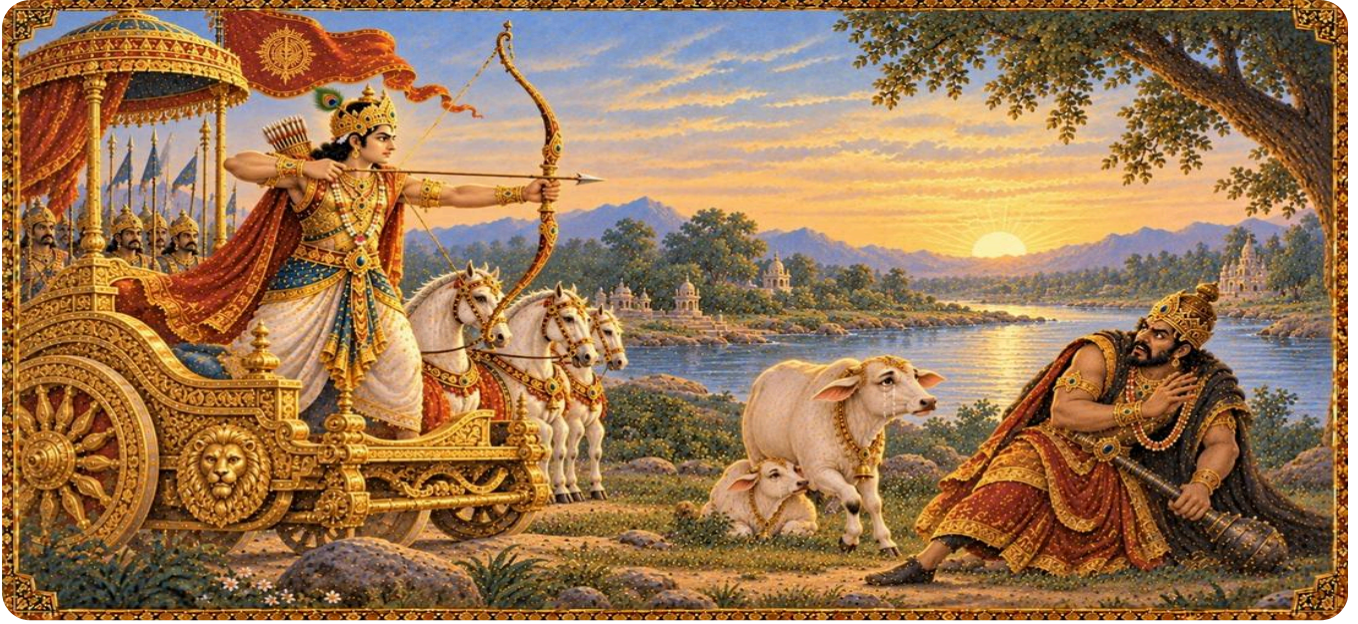
राजा ने धनुष चढ़ाया

परीक्षित ने तनिक भी विलम्ब नहीं किया। अपने स्वर्णमण्डित रथ पर आरूढ़ होकर उन्होंने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई और मेघ के समान गम्भीर वाणी में उस अत्याचारी को ललकारा।

कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान् बली । नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाद्विजः ॥

अर्थ: “तू कौन है, जो इतना बलवान् होकर मेरे संरक्षण वाले इस लोक में बलपूर्वक निर्बलों पर प्रहार करता है? वेश से तो तू नरदेव (राजा) प्रतीत होता है, पर कर्म से तू नट की भाँति द्विजेतर (अधम) है।” (श्रीमद्भागवतम् 1.17.5)

राजा ने कहा कि जब श्रीकृष्ण अर्जुन सहित अपने दिव्य धाम को प्रस्थान कर चुके हैं, ऐसे समय में एकान्त स्थान में निरीह प्राणियों पर प्रहार करके इस अपराधी ने स्वयं को वध के योग्य सिद्ध कर दिया है।



राजा का परम धर्म

फिर बैल की ओर मुड़कर परीक्षित ने पूछा कि कहीं यह कमलनाल-सा श्वेत, तीन पैर खोकर केवल एक पैर पर चलने वाला कोई देवता तो नहीं, जो ऐसा शोक उत्पन्न कर रहा है। पौरव-वंशी राजाओं की भुजाओं से रक्षित इस पृथ्वी पर, उन्होंने कहा, किसी प्राणी की आँख से कभी आँसू नहीं गिरा। तब उन्होंने वह सिद्धान्त कहा जो इस अध्याय का नैतिक केन्द्र है:

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्यसाधुभिः । तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥ एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः । अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥

अर्थ: “जिसके राज्य में समस्त प्रजा दुष्टों से त्रस्त रहती है, उस प्रमादी राजा की कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य और परलोक-गति नष्ट हो जाती है। दुखियों के दुःख का निवारण करना ही राजाओं का परम धर्म है। अतः प्राणियों के इस अधम शत्रु का मैं वध करूँगा।” (श्रीमद्भागवतम् 1.17.10-11)

उन्होंने बैल से पूछा कि किसने उसके तीन पैर काट डाले, और वचन दिया कि श्रीकृष्ण के भक्त राजाओं के राज्य में ऐसा कोई पीड़ित न रहे। और उन्होंने आदर्श को स्पष्ट शब्दों में कहा:

राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालनम् । शासतोऽन्यान् यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥

अर्थ: “अपने-अपने धर्म में स्थित जनों का पालन करना, तथा शास्त्र के अनुसार मार्गभ्रष्ट अन्य जनों का — आपत्तिकाल को छोड़कर — शासन करना ही राजा का परम धर्म है।” (श्रीमद्भागवतम् 1.17.16)



धर्म का उत्तर

बैल का उत्तर शास्त्र की महान् विनम्रता-शिक्षाओं में से एक है। धर्म ने कहा कि रक्षा का ऐसा आश्वासन पाण्डु-वंशजों के सर्वथा योग्य है, जिनके गुणसमूह ने स्वयं श्रीकृष्ण को उनका दूत बनने के लिए प्रेरित किया था। परन्तु, उन्होंने कहा, नाना दार्शनिकों के परस्पर विरोधी मतों से मोहित प्राणी सहज ही यह नहीं बता सकते कि दुःख का कारण कौन है। कुछ आत्मा को ही कारण मानते हैं; कुछ प्रारब्ध को; कुछ अपने कर्मों को; कुछ प्रकृति को; कुछ ईश्वर को; और कुछ इसे वाणी तथा मन से परे बताते हैं। धर्म ने राजर्षि को अपनी बुद्धि से इनका विचार करने के लिए विनम्रता से आमन्त्रित किया। अपने पीढ़ी तक का नाम न लेकर धर्म ने उसी सहनशीलता को साकार किया जिसके वे प्रतीक हैं।

धर्म के चार चरण

यह सुनकर परीक्षित समझ गए। उन्होंने जान लिया कि वह बैल स्वयं धर्म हैं, और अपराधी का नाम न बताने के पीछे एक गहरा सत्य है: जो दोषी की निन्दा करता है, वह भी कहीं उसके दोष का भागी न बन जाए। तब राजा ने इस दृश्य के पीछे छिपे महान् वैश्विक क्रम को उद्घाटित किया:

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः । अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ॥

अर्थ: “सत्ययुग में आपके चार चरण थे — तप, शौच, दया और सत्य। इनमें से तीन को अधर्म के अंशों — दर्प, अत्यासक्ति और मद — ने भंग कर दिया।” (श्रीमद्भागवतम् 1.17.24)

इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः । तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥

अर्थ: “हे धर्म, अब आपके पास केवल एक चरण — सत्य — शेष है, जिसके सहारे आप किसी प्रकार टिके हुए हैं। असत्य से बढ़ा हुआ यह अधर्मरूप कलि उसे भी छीन लेना चाहता है।” (श्रीमद्भागवतम् 1.17.25)

राजा ने आगे कहा कि यह गाय और कोई नहीं, स्वयं पृथ्वी माता हैं, जिनका भार श्रीहरि ने उतारा और जिनकी भूमि कभी उनके चरण-चिह्नों से सुशोभित थी। अब उनके द्वारा त्यक्त होकर वे किसी अभागिन स्त्री की भाँति शोक करती हैं, इस भय से कि ब्राह्मणद्रोही और मात्र राजा का ढोंग रचने वाले उन पर शासन करेंगे।



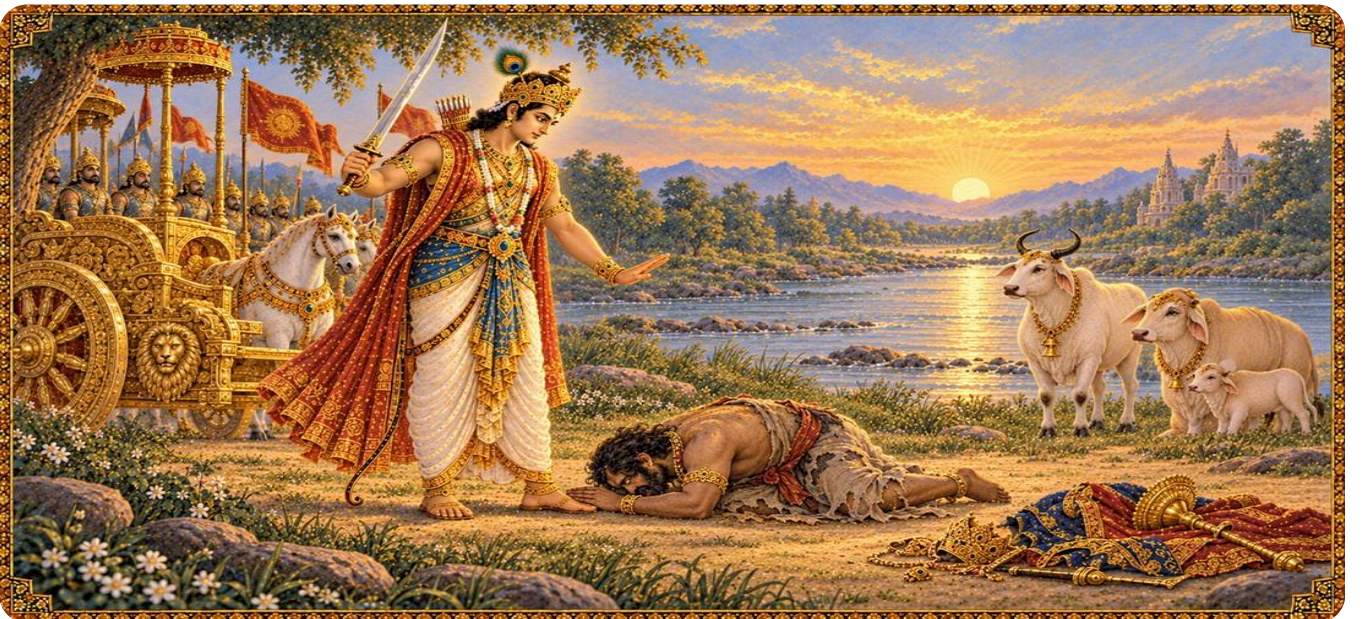
शरणागत पर करुणा

धर्म और पृथ्वी माता — दोनों को सान्त्वना देकर उस महारथी ने अधर्म के मूल कलि का अन्त करने के लिए अपनी तीक्ष्ण तलवार खींच ली।

इति धर्मं महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः । निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महितवे ॥

अर्थ: “इस प्रकार धर्म और पृथ्वी को सान्त्वना देकर उस महारथी ने अधर्म के कारणभूत कलि का वध करने के लिए तीक्ष्ण तलवार उठा ली।”
(श्रीमद्भागवतम् 1.17.28)

यह देखकर कि राजा उसका वध करना चाहते हैं, कलि ने अपना राजवेश उतार फेंका और भय से विह्वल होकर परीक्षित के चरणों में अपना सिर रख दिया। और यहीं अध्याय मुड़ जाता है। दीनों पर दयालु और शरणागतों के आश्रय वह राजा उस चरणों में गिरे हुए पर करुणा से भर उठे। उन्होंने प्रहार नहीं किया। मुस्कराते हुए उन्होंने कहा।



राज्य से निवासन

राजा ने कहा, “तूने हाथ जोड़कर हमारे — अर्जुन के गौरव के उत्तराधिकारियों के — सम्मुख प्रणाम किया है, अतः तुझे किसी प्रकार का भय नहीं। पर तू अधर्म का बन्धु है, इसलिए मेरे राज्य में किसी भी दशा में नहीं रह सकता।” परीक्षित ने देखा कि जब से कलि राजाओं के हृदय में बसा है, उसके पीछे-पीछे अनेक दोष चले आए हैं — लोभ, असत्य, चोरी, दुष्टता और दम्भ। उन्होंने कहा कि सबसे कम उसे ब्रह्मावर्त में रहना चाहिए, उस पवित्र भूमि में जहाँ ज्ञानीजन यज्ञपति भगवान् की आराधना करते हैं, और जहाँ श्रीहरि विश्वात्मा के रूप में — वायु की भाँति समस्त प्राणियों के भीतर-बाहर विचरण करते हुए — अपने भक्तों की कामनाएँ पूर्ण करते हैं।

मैं कहाँ रहूँ?

यमराज के समान दण्ड उठाए खड़े राजा की आज्ञा सुनकर कलि काँप उठा। तब हाथ जोड़कर उसने विनम्र प्रार्थना की: सम्राट की आज्ञा के अनुसार वह जहाँ भी बसने का विचार करता है, वहीं उसे राजा धनुष-बाण हाथ में लिए खड़े दिखाई देते हैं। अतः उसने “धर्मरक्षकों में श्रेष्ठ” परीक्षित से प्रार्थना की कि वे कोई ऐसा स्थान बताएँ जहाँ वह राजा के संरक्षण में धर्मपूर्वक रह सके।

कलि के पाँच निवास

राजा का उत्तर समस्त भागवत के सर्वाधिक व्यावहारिक प्रसंगों में से एक है। अधर्म को स्वच्छन्द विचरने देने के बजाय परीक्षित ने उसे सीमित कर दिया — उसे निश्चित निवास सौंप दिए, जिससे विवेकी जन ठीक-ठीक जान सकें कि किनसे बचना है।

सूत उवाच अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ । द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥

अर्थ: सूत जी ने कहा — “इस प्रकार प्रार्थना किए जाने पर राजा ने कलि को ये स्थान दिए — द्यूत (जुआ), मद्यपान, स्त्री-संग (व्यभिचार) और हिंसा — जहाँ चार प्रकार का अधर्म निवास करता है।” (श्रीमद्भागवतम् 1.17.38)

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः । ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥

अर्थ: “कलि के और माँगने पर उस समर्थ राजा ने उसे पाँचवें स्थान के रूप में स्वर्ण दे दिया। इस प्रकार इनमें असत्य, मद, काम, रजोगुण और वैर निवास करते हैं।” (श्रीमद्भागवतम् 1.17.39)

आज्ञा का पालन करते हुए कलि ने इन पाँच निवासों — द्यूत, मद्यपान, व्यभिचार, हिंसा और अन्यायपूर्वक भोगे गए स्वर्ण — में वास किया। इससे अध्याय हर साधक के लिए एक सीधी, व्यक्तिगत शिक्षा देता है।



धर्म की पुनर्स्थापना

अपना कार्य पूर्ण कर राजा ने उसे सुधारने की ओर ध्यान दिया जो भंग हो चुका था। उन्होंने बैल के तीन खोए हुए चरण — तप, शौच और दया — पुनः जोड़ दिए, और पृथ्वी माता को सान्त्वना देकर उनका पालन-पोषण किया।

वृषस्य नष्टांस्त्रीन् पादान् तपः शौचं दयामिति । प्रतिसन्दध आश्वस्य महीं च समवर्धयत् ॥

अर्थ: “बैल के तीन नष्ट हुए चरण — तप, शौच और दया — उन्होंने पुनः जोड़ दिए, और पृथ्वी को आश्वस्त कर उसे फिर से समृद्ध किया।”
(श्रीमद्भागवतम् 1.17.42)

सूत जी ने ऋषियों को स्मरण कराया कि वही सम्राट आज भी उस राजसिंहासन पर विराजमान हैं, जो वन को प्रस्थान करते समय उनके पितामह युधिष्ठिर ने उन्हें सौंपा था, और वे हस्तिनापुर में महिमामण्डित होकर शासन करते हैं। उन्होंने उसी कारण की ओर संकेत करके समापन किया जिसके लिए ऋषिगण यह दीर्घ यज्ञ कर रहे थे:

इत्थम्भूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः । यस्य पालयतः क्षौणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥

अर्थ: “अभिमन्यु के इस पुत्र राजा का ऐसा प्रभाव है, जिसके धर्मपूर्वक पृथ्वी-पालन के अन्तर्गत आप लोग इस यज्ञ के लिए दीक्षित हुए हैं।”
(श्रीमद्भागवतम् 1.17.45)

प्रमुख शिक्षाएँ

1. बलवान् का अस्तित्व निर्बल की रक्षा के लिए है। क्रूरता के प्रति परीक्षित की पहली प्रतिक्रिया न उदासीनता है, न क्रोध, अपितु उत्तरदायित्व। जिसके हाथ में शक्ति है, उसका परम धर्म पीड़ितों का दुःख दूर करना है (1.17.10–11, 16)। जहाँ भी हमें बल सौंपा गया है — माता-पिता, नेता, या किसी कक्ष में सबसे समर्थ व्यक्ति के रूप में — वह बल दबाने के लिए नहीं, आश्रय देने के लिए है।

2. धर्म चार चरणों पर खड़ा है, और वे क्षीण हो सकते हैं। तप, शौच, दया और सत्य — ये धर्म के चार आधार हैं। युग-युग में दर्प, आसक्ति और मद इन्हें तोड़ते जाते हैं, यहाँ तक कि कलियुग में केवल सत्य शेष रह जाता है (1.17.24–25)। यह हमारे अपने जीवन के लिए दर्पण है।

3. न्याय तभी पूर्ण होता है जब वह करुणा से युक्त हो। जो राजा तलवार उठाता है, वही शत्रु के शरणागत होने पर उसे झुका भी देता है (1.17.28–30)। सच्चा बल क्षमा न कर पाना नहीं, अपितु दण्ड देने में समर्थ होकर भी छोड़ देने की स्वतन्त्रता है।

4. अधर्म का सर्वथा नाश नहीं होता, पर उसे सीमित किया जा सकता है। कलि का वध नहीं होता; उसे निश्चित निवास दे दिए जाते हैं (1.17.38–39)। विवेकी आत्मा इसे उन स्थानों के मानचित्र के रूप में पढ़ती है जहाँ मन सबसे सरलता से भ्रष्ट होता है — धूत, मद्यपान, व्यभिचार, हिंसा और धन का दुरुपयोग — और उनसे सावधानी से दूरी रखती है।

5. एक ही धर्मात्मा सम्पूर्ण युग को रोक सकता है। कलि संसार में प्रवेश कर चुका था, फिर भी जहाँ परीक्षित का शासन था, वहाँ धर्म खड़ा रहा। भगवान् में अनुरक्त एक ही व्यक्ति की उपस्थिति अपने चारों ओर के अंधकार को रोक देती है।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

परीक्षित के लिए कलि का वध कर देना और बात समाप्त कर देना सरल था। अधर्म ने तो स्वयं को उनके चरणों में डाल दिया था। पर यह अध्याय हमें एक अधिक विवेकी राजा दिखाता है। वे समझते थे कि अधर्म कोई व्यक्ति नहीं जिसे मार डाला जाए, अपितु एक प्रवृत्ति है जिसे नियन्त्रित करना है — और यह प्रवृत्ति बीजरूप में हर मानव-हृदय में रहती है। इसलिए उन्होंने एक साथ दो काम किए: उन्होंने अधर्म को अपने राज्य पर शासन नहीं करने दिया, और शरणागति का उत्तर क्रूरता से नहीं दिया।

यहाँ अन्तर्जीवन के लिए एक शिक्षा है। हम अपने भीतर से दर्प, लोभ और असत्य की प्रवृत्ति को एक ही प्रहार में नहीं काट सकते। पर हम वही कर सकते हैं जो परीक्षित ने किया: उसे सिंहासन न दें, उसे उन्हीं संकरे कोनों में सीमित रखें जहाँ वह छिपती है, उन कोनों को ईमानदारी से पहचानें, और सतर्कता की तलवार पास रखें। और हम उसे पुनः बना सकते हैं जो उसने तोड़ा है — तप, शौच और दया को एक-एक छोटे कर्म से फिर खड़ा करते हुए — जिससे धर्मात्मा राजा के अधीन पृथ्वी माता की भाँति हमारा अपना हृदय भी पुनः समृद्ध हो उठे।

दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज “धर्म के चार चरणों” में से एक चुनिए — तप (सरलता), शौच (पवित्रता), दया, अथवा सत्य — और उसे एक सुविचारित कर्म से दृढ़ कीजिए। जहाँ बात को टाल देना सरल हो, वहाँ एक पूर्ण सत्य वचन बोलिए; अथवा किसी ऐसे व्यक्ति पर एक अनवरत करुणा दर्शाएँ जो प्रत्युपकार नहीं कर सकता। ऐसा करते हुए उस कर्म को शान्त भाव से भगवान् को समर्पित कीजिए, यह स्मरण रखते हुए कि एक छोटे-से प्राणी की रक्षा करके राजा परीक्षित स्वयं धर्म की ही रक्षा कर रहे थे।

उपसंहार

प्रथम स्कन्ध का सत्रहवाँ अध्याय हमें एक आदर्श राजा का — और उसके माध्यम से एक आदर्श आत्मा का — चित्र देता है। सरस्वती के तट पर पीटे जाते बैल और रोती हुई गाय की पुकार सुनकर सम्राट परीक्षित उनकी रक्षा के लिए दौड़ पड़ते हैं, उनमें धर्म और पृथ्वी माता को पहचानते हैं, और स्वयं कलि का सामना करते हैं। वे बलवानों का शाश्वत धर्म घोषित करते हैं कि वे असहायों को आश्रय दें; वे स्वर्णयुग से लेकर हमारे युग तक धर्म के क्रमिक क्षय को दर्शाते हैं; वे अधर्म पर तलवार उठाते हैं और फिर, उसके शरणागत होने पर, करुणा से उसे झुका देते हैं।

कलि को अपने राज्य में स्थान न देकर वे युग के इस मूर्तरूप को उसके पाँच परिचित आश्रयों में सीमित कर देते हैं और हर साधक को उनसे बचने की चेतावनी देते हैं। अन्ततः वे उसे सुधार देते हैं जो आहत हुआ था — धर्म के चरणों को पुनः जोड़कर और पृथ्वी को आनन्दित करके — और महिमा में शासन करते रहते हैं। इन पैतालीस श्लोकों में भागवत हमें सिखाता है कि अंधकार को एक ही अनुरक्त हृदय रोक सकता है, और न्याय अपनी पूर्णता केवल करुणा में पाता है।

श्रीमद्भागवत का यह दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

हृदय में धारण करने योग्य एक श्लोक

अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् । विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥

अर्थ: “अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को कलि के इन पाँच निवासों का कभी सेवन नहीं करना चाहिए — और विशेषकर धर्मशील पुरुष को: राजा, लोकनायक अथवा गुरु को।” (श्रीमद्भागवतम् 1.17.41)

सन्दर्भ एवं आभार

मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, प्रथम स्कन्ध, सप्तदश अध्याय (“कलि-निग्रह”), पुस्तक-पृष्ठ 69–73।

यह लेख लेखक के अपने शब्दों में किया गया एक मूल एवं निष्ठावान् पुनर्कथन है; इसमें किसी प्रकाशक का सम्पूर्ण अनुवाद या टीका पुनः प्रस्तुत नहीं की गई है। उद्धृत अंश केवल वहीं दिए गए हैं जहाँ संकेत है। न गीता प्रेस, न कोई अन्य प्रकाशक इस लेख का प्रायोजक अथवा समर्थक है।

पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-1-adhyaya-17-kali-ka-daman.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट